गायत्री मंत्र के 'व' अक्षर की व्याख्या

नारी की महानता



-पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मूल्य : २.०० रुपया

सन् २००३

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

नारी की महानता

गायत्री मंत्र का पाँचवाँ अक्षर 'व' नारी जाति की महानता और उसके विकास की शिक्षा देता है–

वद नारीं बिना कोऽन्यो निर्माता मनु सन्तते ।
महत्वं रचना शक्तेः स्वस्याः नार्याहिज्ञायताम् ।।

अर्थात्–'मनुष्य की निर्मात्री नारी ही है । नारी को अपनी शक्ति का महत्व समझना चाहिए ।'

नारी से ही मनुष्य उत्पन्न होता है । बालक की आदि गुरु उसकी माता ही होती है । पिता के वीर्य की एक बूँद ही निमित्त मात्र होती है, बाकी बालक के समस्त अंग–प्रत्यंग माता के रक्त से बनते हैं । उस रक्त में जैसी स्वस्थता, प्रतिभा, विचार–धारा, अनुभूति होगी उसी के अनुसार बालक का शरीर, मस्तिष्क और स्वभाव बनेगा । नारियाँ यदि अस्वस्थ, अशिक्षित, अविकसित, पराधीन, कूपमण्डूक और दीन–हीन रहेंगी तो उन के द्वारा उत्पन्न बालक भी इन्हीं दोषों से युक्त होंगे । ऊसर खेत में अच्छी फसल उत्पन्न नहीं हो सकती ।

यदि मनुष्य जाति उन्नति चाहती है तो पहले नारी को शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण और सुविकसित बनाना होगा, तभी मनुष्यों में सबलता, सक्षमता, सद्बुद्धि, सद्गुण और महानता के संस्कारों का उदय हो सकता है । नारी को पिछड़ा हुआ रखना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है ।

मनुष्य समाज दो भागों में बँटा हुआ है–(१) नर (२) नारी । आजकल नर की उन्नति, सुविधा और सुरक्षा के लिए तो प्रयत्न किया जाता है, परन्तु नारी हर क्षेत्र में पिछड़ी है, फलस्वरूप हमारा आधा राष्ट्र, आधा समाज, आधा परिवार, आधा जीवन पिछड़ा हुआ रह जाता है । जिस रथ का एक पहिया बड़ा और दूसरा छोटा हो वह ठीक ढंग से नहीं चल सकता । हमारा देश, समाज, जाति तब तक सच्चे अर्थों में विकसित नहीं कहे जा सकते । जब तक नारी को भी नर के समान ही क्रियाशीलता और प्रतिभा प्रकट करने का अवसर न मिले ।

नारियों के उत्थान की समस्या

नारी का महत्त्व इतना अधिक होने पर भी वर्तमान समय में हमारे देश की अवस्था इस दृष्टि से विपरीत दिखलाई पड़ती है । हम यह तो भली प्रकार समझते हैं कि साधारण गृहस्थ समाज में, सुखी जीवन-यापन में नारी का बड़ा भारी हाथ रहता है । योग्य नारी के आगमन से घर चमक उठता है और अयोग्य के उपस्थित होने पर वह कलह एवं अशान्ति का अखाड़ा बन जाता है । साधारणतः प्रत्येक स्त्री-पुरुष की योग्यता एवं विचारों में भिन्नता रहती ही है, पर वह इतनी अधिक हो जाय कि बात-बात में एक-दूसरे से अनबन बढ़ने लगे तो उस घर को लड़ाई का मैदान समझना चाहिए । बहुत बार यह अनुभव हुआ है कि आज के वातावरण में पला हुआ युवक चाहता है कि स्त्री नवीन सभ्यता के ढाँचे में ढल जाय, पर पत्नी वैसे वातावरण में न पलने व शिक्षित न होने के कारण उस बात को पसन्द नहीं करती । अतः परस्पर अनबन रहती है । कई व्यक्ति स्त्रियों के साथ जबरदस्ती भी करते हैं । उससे जबरन मन चाहा कार्य करवाया जाता है । करना तो उसे पड़ता ही है, पर उसका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है । मन दुर्बल हो जाता है । आशाएँ और उत्साह विलीन हो जाता है । अतः दोनों के विचारों में साधारणतः समानता होनी आवश्यक है । अन्यथा सारा जीवन क्लेशदायक और भार रूप हो जाता है । इसके लिए नारी जाति में शिक्षा के प्रचार की बहुत आवश्यकता है, जिससे वह स्वयं अपना भला बुरा सोच समझ सकें और कर्तव्य निर्धारण कर सकें ।

शिक्षा की उपयोगिता जीवन के प्रत्येक पल में होने पर भी वर्तमान शिक्षा में सुधार की आवश्यकता प्रतीत होती है । आज की शिक्षित कन्याएँ बड़ी फैशन प्रिय हो गई हैं, अतः खर्च बहुत बढ़ जाता है । वे घर वालों के प्रति अपना कर्तव्य भी बिसार देती हैं अतः जिस शिक्षा से वह सुगृहणी बनें उसी की आवश्यकता है ।

साधरणतया हमारे यहाँ कन्या का जन्म पिता के लिए बड़ा दुःखद समझा जाता है क्योंकि वह पराया घर बसाती है । उसके लिए वर ढूँढ़ने, विवाह करने एवं उसे दहेज देने में बड़ा धन व्यय करना पड़ता है । वास्तव में दहेज प्रथा समाज के लिए अभिशाप बन चुकी है । बिना वर

के पिता को राजी किए कन्या का विवाह करना कठिन हो गया है । अतः वर्तमान समाज व्यवस्था में सुधार करना परमावश्यक है । उसके पराये घर बसाने की कह कर अनादर करना सर्वथा अविचार पूर्ण है क्योंकि हमारे घर में पुत्र–वधू आती है, वह पराये घर से आने पर भी हमारा घर बसाती है । यह तो बराबरी का सौदा है । विधवा बहनों के प्रति तो हमें अधिक सहानुभूति रखनी चाहिए एवं उन्हें समाज सेवा के योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । वे चाहें तो समाज का बड़ा कल्याण कर सकती हैं ।

नारी धर्म का प्राचीन आदर्श

सत्राजित–दुहिता तथा भगवान श्रीकृष्ण की अर्धांगिनी सत्यभामा ने द्रौपदी से प्रश्न किया–"हे द्रौपदी ! कैसे तुम अति बलशाली पाण्डु पुत्रों पर शासन करती हो ? वे कैसे तुम्हारे आज्ञाकारी हैं तथा तुमसे कभी कुपित नहीं होते ? तुम्हारी इच्छाओं के पालन हेतु सदैव प्रस्तुत रहते हैं । मुझे इसका कारण बतलाओ ।"

द्रौपदी ने उत्तर दिया–"हे सत्यभामा ! पाण्डु पुत्रों के प्रति मेरे व्यवहार को सुनो–मैं अपनी इच्छा, वासना तथा अहंकार को वश में कर अति श्रद्धा एवं भक्ति से उनकी सेवा करती हूँ । मैं किसी अहंकार–भावना से उनके साथ व्यवहार नहीं करती ।

मैं बुरा और असत्य भाषण नहीं करती । मेरा हृदय कभी किसी सुन्दर युवक, धनवान या आकर्षण पर मोहित नहीं होता । मैं कभी नहीं स्नान करती, खाती अथवा सोती, जब तक कि पति नहीं स्नान कर लेते, खा लेते अथवा सो जाते एवं तब तक जब तक कि हमारे समस्त सेवक तथा अनुगामी नहीं स्नान कर लेते, खा लेते या सो जाते । जब कभी भी मेरे पति क्षेत्र से, वन से या नगर से लौटते हैं, तो मैं उसी समय उठ जाती हूँ, उनका स्वागत करती हूँ तथा उनको जलपान कराती हूँ ।

मैं घर के सामान तथा भोजन को सदैव स्वच्छ एवं क्रम से रखती हूँ । सावधानी से भोजन बनाती तथा ठीक समय पर परोसती हूँ । मैं

कभी भी कठोर शब्द नहीं बोलती । कभी भी अनुलाओं (बुरी स्त्रियों) का अनुसरण नहीं करती ।

मैं वही करती हूँ जो उनको रुचिकर तथा सुखकर लगता है । कभी भी आलस्य तथा सुस्ती नहीं दिखाती, बिना विनोदावसर के नहीं हँसती । मैं द्वार पर बैठ कर व्यर्थ समय नष्ट नहीं करती । मैं क्रीड़ा–उद्यान में व्यर्थ नहीं ठहरती जब कि मुझे अन्य काम करने होते हैं ।

जोर–जोर से हँसना, भावुकता तथा अन्य इसी प्रकार अप्रिय लगने वाली वस्तुओं से अपने को बचाती एवं सदैव पति सेवा में रत रहती हूँ ।

पति–विछोह मुझे कभी नहीं सुहाता । जब कभी मेरे पति मुझे छोड़कर बाहर जाते हैं तो मैं सुगन्धित पुष्पों तथा अंगराग का प्रयोग न कर जीवन कठोर तपस्या में बिताती हूँ । मेरी रुचि–अरुचि, मेरे पति की रुचि–अरुचि ही है और उन्हीं की आवश्यकतानुसार अपना समायोग करती हूँ । मैं प्राण–प्रण से अपने पति की भलाई चाहती हूँ । मैं उन वक्तव्यों का यथातथ्य पालन करती हूँ जो कि मेरी सास ने सम्बन्धियों, अतिथि, दान, देव–पूजा एवं पितृ–पूजा के विषय में बतलाए थे । मैं उनका निशदिन अक्षरशः पालन करती हूँ । 'मैं अपने पति के साथ बहुत ही नम्रता और आदर का व्यवहार करती हूँ । पति–सेवा में निर्धारित व्यावहारिक नियमों से तनिक भी विचलित नहीं होती । मेरा विचार है कि नारी का सर्वोत्तम गुण पति सेवा ही है । पति स्त्री का ईश्वर है । वही उसका एक मात्र शरणालय है । उसके लिए और कहीं शरण नहीं है । ऐसी दशा में पत्नी वह कार्य कैसे कर सकती है जो कि उसके पति को अप्रिय एवं अरुचिकर प्रतीत होते हैं ।

मेरे पति मेरे मार्गदर्शक हैं । मैं कभी भी अपनी सास की बुराई नहीं करती । मैं कभी भी सोने, खाने अथवा अलंकरण में अपने पति की इच्छा के प्रतिकूल नहीं जाती । मैं अपने काम पूर्णतः एकाग्र चित्त, प्रोत्साहित हो किया करती हूँ ।

मैं अपने गुरु की सेवा अत्यन्त नम्रता से किया करती हूँ अतएव मेरे पति मुझसे बहुत प्रसन्न रहते हैं । प्रतिदिन मैं अपनी सास की सेवा अति आदर और नम्रता से करती हूँ । मैं खाने, पीने तथा कपड़ों आदि का स्वयं निरीक्षण करती हूँ । मैंने खाने, पीने, गहने, कपड़े आदि के विषय

में अपनी सास से अधिक पाने की कभी इच्छा नहीं की । मैं उनका अत्यधिक सम्मान करती हूँ । महाराज युधिष्ठिर के राज–प्रासाद में वेद–पाठ करने वाले ब्राह्मणों की मैं भोजन, जल तथा परिधान द्वारा पूजा करती हूँ । मैं समस्त परिचारिकाओं के अभियोग सुनती तथा उनके निराकरण का उद्योग करती और उनको संतुष्ट रखने का प्रयत्न करती हूँ ।

मैं उनके पालन योग्य नियमों को बनाती हूँ । मैं अतिथियों की अति भक्ति भाव से सेवा करती हूँ । मैं सर्वप्रथम शैया से उठती तथा सबसे पीछे शयन को जाती हूँ ।

हे सत्यभामा ! यही मेरा व्यवहार और अभ्यास रहा है जिसके कारण मेरे पति मेरे आज्ञाकारी हैं । अब मैं तुमको अपने पति को आकर्षित करने का उपाय बतलाऊँगी । संसार में ऐसा कोई भी देवता नहीं है–जो पति की बराबरी कर सके, यदि पति तुमसे प्रसन्न हैं तो तुम्हारे पराक्रम की सीमा नहीं है और यदि वे अप्रसन्न हैं तो तुम सब कुछ खो दोगी । तुम अपने पति से परिधान, अलंकार कीर्ति यहाँ तक कि अन्त में स्वर्ग भी पा सकती हो । जो स्त्री पतिव्रता प्रेम परिचित तथा कर्तव्यवती होती है उसके निमित्त सुख तो एक प्रकार का जन्म सिद्धि अधिकार होता है । उसको कष्ट एवं कठिनाइयों का यदि सामना करना पड़े तो वे अल्पकालीन तथा मायावी होते हैं । अतएव सदैव प्रेम और भक्ति से कृष्ण की उपासना करो । सेवा के निमित्त सदैव प्रस्तुत रहो, पति के सुख का भी ध्यान रखो । वह तुम्हारा भक्त बन जायेगा और सोचेगा कि मेरी पत्नी मुझे सचमुच प्यार करती है । मैं भी उसका अनुगमन करूँ । द्वार पर जैसे ही अपने पति की आवाज सुनो, खड़ी हो जाओ तथा उसकी सेवा के लिए प्रसन्न वदन हो प्रस्तुत रहो । जैसे ही वे कक्ष में प्रवेश करें, उनको आसन तथा पैर धोने को जल दो । जब वह किसी परिचारिका को किसी काम के लिए पुकारें तो तुम स्वयं जाकर वह काम करो । कृष्ण को अनुभव करने दो कि तुम अन्तःकरण से उनकी पूजा करती हो । सदैव अपने पति की भलाई सोचो । वही उन्हें खिलाओ जो कि उन्हें रुचिकर हो । उनके पास मत उठो–बैठो जो भी तुम्हारे पति से विद्वेष रखते हैं । पति की उपस्थिति में कभी भी उत्तेजित न हो अपने मन को मौन धारण कर शान्ति दो । केवल उन्हीं

स्त्रियों से मित्रता रखो जो पति–भक्त हैं, जो उच्च कुल, पाप शून्य तथा गुणवती और उज्ज्वल चरित्र की हैं । तुमको स्वार्थी तथा बुरे स्वभाव की स्त्रियों से दूर रहना चाहिए ।

इस प्रकार का आचरण प्रशंसनीय होता है । यही समृद्धि, प्रसिद्धि तथा सुख का द्वार खोल देता है । अतएव अपने पति की प्रेम, विश्वास एवं भक्ति भाव से पूजा करो ।'

तब सत्यभामा ने द्रौपदी को हृदय से लगा लिया और कहा–"ओ पवित्रे ! तुम पृथ्वी पर अपने पति के साथ शान्ति का भोग करोगी । तुम्हारे पुत्र द्वारिका में आनन्द से हैं । तुम शुभ चिन्हों से सुशोभित हो । तुम कभी भी अधिक समय तक दुर्भाग्य न भोगोगी । मैं तुम्हारी प्राण प्रेरक वार्ता से अति लाभान्वित हुई । यह बुद्धिमत्ता तथा उच्च विचारों की खान है । प्रिय द्रौपदी तुम सदैव प्रसन्न रहो ।'

यह शब्द कहती हुई सत्यभामा रथ पर बैठ गईं और भगवान के साथ उन्होंने अपने नगर को प्रस्थान किया ।

(वन पर्व अ. २३२–२३३)

हमारी पवित्र मातृभूमि, भारतवर्ष ने सुलभा, गार्गी, मदालसा आदि साधु नारियों, सीता, सावित्री, अनुसूया तथा नलयानी आदि पतिव्रताओं तथा मीरा जैसी भक्त नारियों, महारानी चुडलाय जैसी योगिनियों को जन्म दिया है । ये इतिहास में सहस्रों ज्ञात, अज्ञात नामों में से कुछ ही हैं ।

आधुनिक नारी वर्ग को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए । उनको उन्हीं की तरह जीवन बिताना चाहिए । उनको भौतिक प्रभावों से दूर रहना चाहिए । एक व्यसनी, विलासी नारी सच्ची स्वाधीनता को नहीं समझती ।

यत्र–तत्र घूमना, कर्तव्य हीन बनना, मनचाहा सब कुछ करना, सब कुछ खाना–पीना, मोटर दौड़ाना अथवा पच्छिम–निवासियों का अन्धानुसरण करना स्वतंत्रता नहीं है । सतीत्व स्त्री का सर्वोत्तम अलंकार है । सतीत्व की सीमा पार करने, मनुष्य की तरह व्यवहार करने से नारी अपनी कोमलता, बुद्धिमत्ता, प्रताप तथा सुन्दरता का नाश करती है ।

स्त्रियाँ किसी प्रकार भी मनुष्य से हीन नहीं हैं । वे उत्कृष्ट व्यक्तित्व रखती हैं । वे स्वभावतः धैर्यवान, सहनशील, भक्तिभाव पूर्ण होती हैं । वे मनुष्य से अच्छे गुण रखती हैं । वे मनुष्य से अधिक आत्मबल

रखती हैं । उनका देवी रूप में सम्मान तथा आदर करना चाहिए किन्तु फिर भी उनको अपने पतियों की आज्ञाकारिणी होना चाहिए । यह सब कुछ उनके प्रताप, तेज तथा पतिव्रत धर्म को और उज्ज्वल करेगा ।

पत्नी मनुष्य की अर्धांगिनी होती है । कोई यज्ञ अथवा धार्मिक कृत्य उसके बिना सफल न होगा । वह मनुष्य की जीवन साथिन है । ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि जब पत्नी भक्ति और पवित्रता के कारण अपने पति की गुरु बन जाती है । यदि मनुष्य अपनी पत्नी को अपनी दासी, हीन मानकर यह सोचता है कि स्त्री केवल भोजन बनाने तथा भोग के लिए है तो वह अत्यधिक दारुण तथा अक्षम्य अपराध करता है ।

स्त्रियों को शिक्षा देनी चाहिए । सभ्य नारियाँ समाज के निमित्त आशीर्वचन के समान होती हैं । किन्तु अत्यधिक स्वाधीनता तथा स्वच्छता का फल अत्यन्त भयानक होता है । यह दैहिक जीवन महत्वपूर्ण है । मध्यमार्ग ही सर्वोत्तम हैं । किसी वस्तु का अतिक्रमण बुरा होता है । स्त्रियों को गीता, भागवत, रामायण तथा अन्य धार्मिक पवित्र ग्रन्थों का ज्ञान होना चाहिए । स्वास्थ्य विज्ञान, गृह चिकित्सा, परिचर्या कर्म, बाल शिक्षण, आहार शास्त्र तथा संतान शास्त्र आदि का ज्ञान होना चाहिए ।

स्त्रियाँ प्रकृतितः अच्छी माताएँ होती हैं । ईश्वरीय महान उपक्रम में उनको इतना महान् कार्य करना होता है । दैवी–उपक्रम में यही सोचा गया था । यही ईश्वरीय इच्छा है । स्त्रियाँ अपना अलग मनोवैज्ञानिक विशिष्ट, स्वभाव, सामर्थ्य, गुण तथा संस्कार रखती हैं । नारी समाज में अपना अलग क्षेत्र रखती है तथा मनुष्य अलग । वे मनुष्य से प्रतियोगिता नहीं कर सकतीं और न उनको करनी चाहिए । उनको मनुष्य का काम नहीं करना चाहिए । अवश्य वे शिक्षित हों उनको अपने धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञान होना चाहिए । माता–पिता का कर्तव्य है कि अपनी पुत्रियों को समुचित शिक्षा दिलायें । यह अत्यावश्यक है । अच्छी माताओं का समाज में पूजनीय स्थान होता है । अच्छी माताएँ सभी से सम्मानित तथा आदर का पात्र होती हैं । समाज में अतुलनीय, स्थिति अपूर्व स्थान तथा पद की अधिकारिणी हैं ।

भारतीय नारी की महानता

यद्यपि काल प्रभाव से भारतीय नारियों का प्राचीन आदर्श बहुत कुछ मिट गया है, परिवर्तित हो गया है, तो भी प्राचीन संस्कारों के कारण अब भी एक साधारण भारतीय नारी में जो विशेषताएँ मिलती हैं, संसार के किसी भी अन्य भाग में मिल सकना असंभव है। अब भी भारतीय नारियों में जितना सतीत्व, श्रद्धा, त्याग का भाव पाया जाता है, उसका उदाहरण किसी भी देश में मिल सकना कठिन है।

बचपन से ही नारी में भोलापन होता है। उसमें सहनशीलता, सुकुमारता, लज्जा, उदारता आदि गुण स्वाभाविक होते हैं, और साथ ही होती है आत्मसमर्पण की प्रबल साधना। यह जिसे आत्म–समर्पण करती है उसके दोषों को नीलकण्ठ की तरह जीवन भर बूँद–बूँद करके पी जाने में सतत् प्रयत्नशील रहा करती है और उसे मानती है–अपना स्वाभाविक देवता। वह उसे अपने हृदय से कभी विलग नहीं करना चाहती। साथ ही साथ आत्म समर्पण के बाद वह अपने जीवन–धन के प्रत्येक कार्य की जानकारी चाहती है –केवल घर के कार्यों से ही बस नहीं, वह तो अपने पतिदेव के सम्बद्ध सभी बाहरी कार्यों का भी लेखा चाहती है। यह सब क्यों ? इसीलिए कि वह अपना सब कुछ उसे समर्पित करके उसकी अर्धांगिनी बन गई है और अपने दूसरे अंग के विषय में चिन्ता करना उसका स्वाभाविक अधिकार है। इसके औचित्य को न मानना पुरुषों की नासमझी होगी।

इस प्रकार नारी प्रारम्भ से ही अपने जीवन को उत्सर्ग के मार्ग पर ले जाती है, उसका आदान भी अवसर आने पर उत्सर्ग के लिए हो जाता है। संसार में अपने लिए उसका कुछ नहीं। उसके पास जो कुछ है वह सब दूसरों के लिए–पति, परिवार और देश के लिए।

आदान के विषय में वह गर्भ धारण करती है। यह सबसे बड़ा उदाहरण दिया जाता है। परन्तु यदि गम्भीरता से सोचा जाय तो उससे उसको अपने लिए क्या मिलता है–वह तो हो जाती है देश और समाज के लिए महान देन।

वह अपना रक्त पिला–पिला कर गर्भ का पालन करती है, नौ मास तक अनावश्यक बोझ ढोती है, घुमरी, मचलाहट, खुमारी आदि के प्रकोप

से दिन–रात परेशान रहती है, चलते समय अचानक गिर पड़ती है और कभी–कभी तो गर्भप्रसव की असह्य पीड़ा से अन्त में जान तक खो देती है और यदि बच्चा सकुशल पैदा भी हो गया तो वह देश और समाज का होता है न कि उसका, क्योंकि बड़ा होने पर वह अपनी इच्छा के अनुसार मार्ग पकड़ लेता है । तब भला इसे आदान कैसे कहा जाय ? शरीर भी, जिसे वह अपना कह सकती, गर्भ के कारण क्षीण हो जाता है । तब उसे मिला क्या ? वह तो शुक्र की कुछ बूँदें ग्रहण करती है और उसके साथ शरीर के रक्त की सहस्रों बूँदें मिलाकर समाज के लिए एक नई सन्तति का महान दान करती है । फिर आदान कैसा ?

बच्चा पैदा होता है और वह उस समय काल के गाल से निकले हुए पीत शरीर को लेकर सप्ताहों चारपाई पर पड़ी रहती है । कराहती है, छटपटाती है और अपने को असमर्थ देखकर चुपचाप शैया पर लेटी रहती है । इस व्यापार में गर्भ धारण करना आदान कैसे कहा जाय ? यह तो जगत् को एक महान् दान देने का बहाना है । अतएव गर्भाधान एक उदाहरण हो सकता है । महान उत्सर्ग का, न कि आदान का ।

और आगे सोचिए तो नारी की महत्ता और भी निखर उठती है । बच्चे बड़े होते हैं और वह उन्हें प्रसन्न रखने के लिए भैया, लाला, बाबू कह कर पुचकारती हुई खाना–पीना भूल जाती है । यदि उसका परिवार गरीब हुआ अथवा किसी कारणवश उसके भोजनालय में भोजन की कमी रही तो वह सारे परिवार को खिला–पिला कर स्वयं निराहार सो जायगी, किसी से उसके विषय में कुछ सहना या शिकायत करना उसके स्वभाव की बात नहीं । दूसरे दिन संयोग से यदि पर्याप्त भोजन न हुआ तो वह सबको खिला–पिला कर पुनः भूखी रह सकती है, यह क्यों ? क्या उसे भूख नहीं सताती ?

भूख उसे भी सताती है, उसी तरह जैसे सारे मानव प्राणी को ? फिर वह वैसा क्यों करती है ? इसीलिए कि वह दूसरों के लिए अपना उत्सर्ग करना बालापन से सीख चुकी है और यह गुण उसमें स्वाभाविक हो गया है ।

यदि कभी पतिदेव किसी कारणवश घर से नाराज होकर कहीं चले गये तो कौन रात–रात भर बैठी हुई उनके लिए रोती रह जाती है ? आपसी कलह के समय पति की गलती रहने पर भी उनसे कौन स्वयं क्षमा माँगती, रूठने पर मनाती और पग–पग पर बलैया लेती फिरती है ?

कौन अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए चीमूर की स्त्रियों की तरह कुए और नदी में कूद कर जान दे देता है ? किसे अपने अस्तित्व को खोकर जीवन भर दूसरे के वश में रहना खुशी से अंगीकार है ? कौन बारह–एक बजे रात में अतिथि के आ जाने पर शैया और आलस्य त्याग कर उन्निद्र रहने पर भी उसके अशन–वसन के सम्बन्ध में जुटा रह सकता है ?

उक्त सभी प्रश्नों का एक स्वर से उत्तर मिलेगा–भारतीय नारी । धर्म और संस्कृति की प्रतीप स्वरूप भारतीय नारी किसका हल नहीं रखती । वह दानव को भी मानव, हत्यारे को भी धर्मात्मा और निर्दय को भी सदय बना सकती है । उसके आँसुओं में धर्म है, ब्रीड़ा में संस्कृति और हास्य में सुख का राज्य । मानव धर्मों का सच्चे अर्थ में केवल वही पालन कर सकती है ।

मनुजी ने धर्म के दस लक्षण गिनाये हैं–

धृति–क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रयनिग्रहः ।
धीर्विय सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।

इनमें से प्रत्येक को नारी किस तरह निभाती है, इस पर संक्षेप में दृष्टि डालना अधिक समीचीन होगा ।

संसार का कोई भी मानव दस लक्षण सम्पन्न धर्म का पूर्णरूपेण शायद ही पालन कर पाता हो, यदि कोई करता भी होगा तो उसे ऐसा करने में असीम साधना करनी पड़ी होगी । परन्तु नारी के जीवन में उक्त दसों बातें स्वभाव बन गयी हैं । उनके बिना उसे चैन ही नहीं पड़ता । वह उन बातों का कठोरता से पालन करके सारे संसार की पथ–प्रदर्शिका बन गई है ।

कठिन से कठिन परिस्थितियों में आपदाओं से घिरी रहने पर भी वह धैर्य के साथ पति की अनुगामिनी बनी रहती है । पति उसके साथ घोर से घोर अत्याचार कर डालता है, शराबखोरी से उसका जीवन दूभर बना देता है, उसके जेबर बेचकर जुआ खेलता है पर ज्योंही उसे विपन्नावस्था में घर आया देखती है, तो वह सब कुछ भूलकर सहानुभूति के साथ उसकी सहायता में तत्पर हो जाती है । अपनी बीती पीड़ाओं के बदले में एक भी शब्द पति के विरुद्ध कहना उसके बूते का नहीं । वह अपने हृदय और स्वभाव से मजबूर है । कोमलता छोड़कर कठोर बनना

उसे भाता नहीं । उसका शील हृदय क्षमा के अतिरिक्त और कुछ जानना नहीं चाहता । वह अपने में ही पूर्ण है ।

दम के विषय में उसकी तितीक्षा–इच्छा रहते हुए भी अच्छी वस्तुओं और आहार स्वयं न खाकर परिवार वालों को खिला देना, अपनी पीड़ा भूलकर दूसरे की पीड़ा में सम–वेदना प्रकट करना, क्रोध न करके सदैव सरस बनी रहना ही पर्याप्त है ।

शौच और इन्द्रिय निग्रह के लिए उसका प्रतिदिन आचरण अनुकरणीय है । कुटुम्ब, साधु और पति की सेवा करने, उदार हृदय से पीड़ितों और दुखियों को सहारा देने और अपने सुख–दुख की बिना परवाह किये रात–दिन गृह कार्यों में निरत रहकर 'गृहिणी' पद पर ज़िम्मेदारी निभाने से बढ़ कर शौच और इन्द्रिय निग्रह होगा ही क्या ?

नारियों का समाजोत्थान में भाग

आधुनिक विद्वानों ने संसार की विभिन्न जातियों की सभ्यता की जाँच करने में जिन विधियों से काम लिया है, उनमें 'स्त्रियों की स्थिति' एक विशेष स्थान रखती है । संसार में ऐसे देश बहुत कम हैं जिनमें प्राचीनकाल से स्त्रियों को उच्च स्थान दिया गया है । अनेक देशों में तो स्त्रियों को सर्वथा दास का ही दर्जा दिया गया था, पर प्राचीन भारतवासियों ने समाज–निर्माण में स्त्रियों के महत्व को अनुभव करते हुए उनको इतना उच्च स्थान दिया था कि वे पूजा के योग्य मानी गई थीं ।

भारतीय संस्कृति में स्त्री व पुरुष दोनों को एक गाड़ी के दो पहियों की तरह माना गया था । दोनों पहिए साथ–साथ और बराबर चलेंगे तभी जीवन रूपी गाड़ी भली प्रकार अग्रसर हो सकती है । इसी दृष्टि से स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया था । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि "पत्नी पुरुष की आत्मा का आधा भाग है । इसलिए जब तक पुरुष पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक प्रजोत्पादन न होने से वह अपूर्ण रहता है ।"

महाभारत के आदि पर्व (७४–४०) में लिखा है–"भार्या पुरुष का आधा भाग व उसका श्रेष्ठतम मित्र है । वही त्रिवर्ग की जड़ है और

वही तारने वाली है ।" मनु भगवान ने तो स्पष्टतः ही कह दिया है कि "जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं ।" इस व्यवस्था में इस बात की आशंका नहीं थी कि पुरुष अपनी शक्ति का घमण्ड करके स्त्री पर अपना अधिकार दिखला सके । जबकि स्त्री उसी का आधा अंग है तब अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठ सकता । वे दोनों ही बराबर हैसियत रखते हैं । स्त्री और पुरुष एक ही पारिवारिक जीवन के दो विभिन्न पहलू हैं । पारिवारिक जीवन में दो प्रकार की जिम्मेदारियाँ रहती हैं । एक घर के भीतर की और दूसरी घर के बाहर की । इनमें से एक का संचालन विशेषतः स्त्री द्वारा ही होता है और दूसरे का पुरुष द्वारा । पारिवारिक अभ्युदय के लिए दोनों पहलुओं का सुचारु रूप से संचालन होना आवश्यक है । यदि दो में से किसी एक में कमी रही तो जीवन दुखमय हो जाता है ।

स्त्री–पुरुष के एक साथ रहने से ही पारिवारिक जीवन का श्रीगणेश होता है । ज्यों–ज्यों संतान वृद्धि होती है या अन्य प्रकार से परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ने लगती है, त्यों–त्यों उसका आन्तरिक जीवन भी विकसित होने लगता है । इस जीवन का संबंध पूर्णतया स्त्री से ही रहता है । प्राचीन समाज में उसे ही परिवार के छोटे–बड़े सब सदस्यों की चिन्ता करनी पड़ती थीं । उसे अपने घर को साफ–सुथरा रखना, भोजन की व्यवस्था करना और अतिथि सत्कार के उत्तरदायित्व को पूरा करना पड़ता था । उसे अपनी संतान का पालन पोषण करके उन्हें योग्य नागरिक बनाने का प्रयत्न भी करना पड़ता था । इसीलिए उसे गृहिणी के पद पर सुशोभित किया गया था । महाभारत के शांति पर्व (१४४–६६) में लिखा है "घर, घर नहीं है वरन् गृहिणी ही घर कही जाती है ।" प्राचीन सामाजिक जीवन में गृहणी पद अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि उस समय पारिवारिक जीवन स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर स्थित था । इसलिए स्त्रियों को ऊपर लिखे कार्यों के अतिरिक्त सूत कातने, कपड़ा बुनने, गाय दुहने, खेतों संबंधी बहुत से कार्यों की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती थी । यदि स्त्री घर के इन सब कार्यों की जिम्मेदारी अपने ऊपर न उठाये तो स्पष्ट है कि पुरुष को कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा ।

गृहिणी पद के अतिरिक्त प्रकृति ने स्त्री को मातृपद के योग्य भी बनाया है । 'माता' शब्द तो पारिवारिक जीवन के लिए मानो अमृत का भण्डार है । माता, परिवार के लिए त्याग, तप और प्रेम की त्रिवेणी ही है । माता और पुत्र का जो प्रेम परस्पर रहता है, उसी से पारिवारिक जीवन अधिक सुखी बनता है । माता समाज-सेवा के ऊँचे से ऊँचे आदर्शों की साक्षात् मूर्ति ही है । अपने बच्चों को पालने-पोसने में वह सब कष्टों को हँस-हँस कर झेलती है । प्राचीन भारत में माता की महिमा सबसे अधिक बतलाई गई थी और सूत्र तथा स्मृति ग्रन्थों में इस संबंध में बहुत कुछ लिखा गया है ।

स्त्री को उपरोक्त दो पदों के अतिरिक्त एक और पद प्राप्त था और वह था पुरुष की सहचरी का । गृहिणी और माता की जिम्मेदारियों से उसका जीवन नीरस न हो जाय और घर के बाहरी झंझटों में फँस कर उसके पति का भी जीवन कटु न हो जाय, इसलिए वह अपने पति की सहचरी बनकर उसे जीवन-सौख्य का आनन्द प्रदान करती थी । प्रकृति ने उसे जो सौन्दर्य और माधुर्य दिया है, उसे वह अपने प्रयत्नों से ललित कला में परिणत करके जीवन के दुःखों को भुलाने में समर्थ होती थी । उसका सौन्दर्य और माधुर्य युक्त प्रेम, जो उसमें अंग-अंग से टपकता था, उसके पति की दिन भर की चिन्ताओं और झंझटों को दूरे करने में समर्थ होता था । विवाह के समय जो वेद-मंत्र पढ़े जाते थे उनमें स्त्री के गृहिणी, माता और सहचरी के पदों का उल्लेख है । ये भाव पहले से ही वधू के मन पर अंकित कर दिये जाते थे, जिससे नये जीवन में प्रवेश करने के पहले वह अपनी जिम्मेदारियों को भली प्रकार समझ ले । विवाह स्त्री और पुरुष को एक आजीवन बन्धन में बाँध देता था ।

नारी जागरण और वर्तमान सामाजिक स्थिति

इस सचाई से तो कोई इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति पर्याप्त उच्च और संतोषजनक थी । आज भी हम बड़े गर्व के साथ वैदिक काल की विदुषियों, बौद्धकाल की धर्म प्रचारिकाओं और मुसलमान काल की वीरांगनाओं के नाम लेते रहते हैं । पर इसमें सन्देह नहीं कि एक हजार वर्ष की गुलामी के फलस्वरूप

जहाँ अन्य अनेक विषयों में भारतीय समाज का पतन हुआ वहाँ स्त्रियों की स्थिति बहुत गिर गई । अब नवयुग का आविर्भाव होने पर समाज के हितैषियों का ध्यान इस त्रुटि की तरफ गया है और स्वयं अनेक स्त्रियाँ ही अपने अनुचित बन्धनों को ढीले करने का प्रयत्न कर रही हैं । ऐसी महिलाओं को हम दो विभागों में बाँट सकते हैं । एक तो वे जो भारतीय संस्कृति की उपासिका हैं और पतनकाल में उत्पन्न हुई कुप्रथाओं को दूर करके नारियों को पूर्वकाल के उन्नत और उत्तरदायित्वपूर्ण आदर्श की ओर ले जाना चाहती हैं । दूसरे विभाग में उनकी गणना की जा सकती है, जो पश्चिमी शिक्षा और आदर्शों से अनुप्राणित होकर भारतीय महिलाओं को पूर्ण स्वतंत्र और पुरुषों की समानता करने वाली बनाने की पक्षपातिनी हैं । इन में से दूसरे विभाग का मत तो प्रायः सभी समाज हितैषियों ने त्याज्य बतलाया है, पर प्रथम विभाग वाली विदुषी नारियों का मत विचारणीय और अधिकांश में मानने योग्य है । नीचे हम उसी की विवेचना करेंगे ।

हमारे पूर्वजों ने समाज की रचना इस प्रकार की कि कोई किसी को पराधीन न बना सके । स्नेह और कर्तव्य के बन्धन इतने मजबूत हैं कि मनुष्य एक–दूसरे के साथ अपनी सहज प्रकृति के साथ सहज ही बँध जाता है और परस्पर एक–दूसरे के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार हो जाता है । माता अपने बालक के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर सकती है । अपनी जान को भी जोखिम में डाल सकती है पर नौकरानी से वह आशा कितना ही लोभ और भय दिखाने पर भी नहीं की जा सकती ।

नर और नारी के सहयोग से सृष्टि के आरम्भ काल में परिवार बने और समाज की रचना की व्यवस्था करने वालों ने यह पूरा ध्यान रखा कि यह दोनों ही सहयोगी एक–दूसरे के लिए अधिक से अधिक सहायक हों, एक–दूसरे को पराधीन बनाने का अनैतिक प्रयत्न न करें । उसी दृष्टिकोण के अनुसार जन समाज की रचना हुई । नर और नारी लाखों–करोड़ों वर्षों तक एक–दूसरे के सहायक, मित्र और स्वेच्छा से सहयोगी बनकर जीवन व्यतीत करते रहे, इससे स्वस्थ समाज का विकास हुआ उन्नति, प्रगति, प्रसन्नता और सुख–शान्ति के उपहार भी इस व्यवस्था ने दिये ।

विश्व के, विशेषतया भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रकट है कि नारी ने नर के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया है और जीवन की अनेक समस्याओं को सरल करने में, ज्ञान और विज्ञान की महत्वपूर्ण प्रगति में भारी योग किया है । एक ने दूसरे को अपनी अपेक्षा अधिक सम्माननीय समझा और घनिष्टता के आत्मीय बन्धनों को दिन–दिन मजबूत बनाते हुए हर लौकिक दृष्टि से एक–दूसरे पर कोई पराधीनता लादने का प्रयत्न नहीं किया । स्वस्थ विकास और सच्चे प्रेम भाव का तरीका भी इसके अतिरिक्त और कोई न था । भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर नर और नारी, निश्छल शिशुओं की तरह किलकारियाँ मारते हुए परस्पर खेलते–कूदते दीखते हैं । विश्व का अधिक विकास इन्हीं मंगलमयी भावनाओं के साथ हुआ है ।

देवगण, ऋषि और राजाओं से लेकर साधारण गृहस्थ और दीन–हीनों के जीवन में नर और नारी की एकता और समता ऐसी गुथी पड़ी है कि यह निर्णय करना कठिन पड़ता है कि दोनों पक्षों में से किसे प्रथम माना जाय । देव वर्ग में लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती आदि का जो स्थान है उसे किसी पुरुष देवता से किसी भी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता । देवताओं के साथ भी नारी असाधारण रूप से गुथी हुई है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि किसी भी देवता को लें उनकी धर्म–पत्नियाँ उनके समकक्ष ही कार्य और उत्तरदायित्व सँभालती दीखती हैं । सीता और राधा को राम और कृष्ण के जीवन से अलग नहीं किया जा सकता । अनुसूया, अरुन्धती, गार्गी, मैत्रेयी,, शतरूपा, अहिल्या, मदालसा आदि ऋषिकाओं का महत्व भी उनके पतियों जैसा ही है । गान्धारी, सावित्री, शैव्या आदि असंख्यों महिलाएँ योग्यता और महानता की दृष्टि से अपने पतियों से किसी भी प्रकार पीछे नहीं थीं । वैदिक काल में ऋषियों की भाँति अनेक ऋषिकाओं में उनका समुचित स्थान रहा है । यज्ञ में तो नारी की अनिवार्य आवश्यकता मानी गई है ।.

नर और नारी समान रूप से अपना विकास करते हुए आगे बढ़े हैं और संसार को आगे बढ़ाया है । भारतीय संस्कृति का समस्त तत्त्व–ज्ञान और इतिहास इस बात का साक्षी है कि नर ने कदापि कहीं भी यह प्रयत्न नहीं किया है कि नारी को अपने से पिछड़ी हुई, दुर्बल, अविश्वस्त

माने और उसके साधनों का शोषण करके, उसे अपंग बनाकर अपनी मनमर्जी पर चलने के लिए विवशता एवं पराधीनता को लादे । यदि ऐसी बात रही होती तो इतिहास के पृष्ठ दूसरी ही तरह लिखे गये होते–जगद्गुरु कहलाने, विश्व का नेतृत्व करने और विश्व में सर्वत्र आशा और प्रकाश की किरणें फैलाने में जो श्रेय भारत को प्राप्त हुआ था वह कदापि न हुआ होता ।

आज भारतवर्ष में स्त्री जाति का सामाजिक स्थान बहुत पिछड़ा हुआ है । उसके व्यक्तित्व को इतना अविकसित बना दिया गया है कि वह सब प्रकार परमुखापेक्षी और लुन्ज–पुन्ज हो गई है । रसोई और प्रजनन इन दो कार्यों को छोड़कर किसी क्षेत्र में उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई है । शहरों में अब कन्याओं को लोग थोड़ा–सा इसलिए पढ़ाने लगे हैं कि पढ़े–लिखे लड़कों के साथ उसकी शादी करने में सुविधा हो । विवाह होते ही वह शिक्षा समाप्त हो जाती है और फिर जीवन भर और आगे की पढ़ाई तो दूर जो कुछ पढ़ा था उसका उपयोग करने का भी अवसर नहीं आता । आर्थिक दृष्टि से नारी सर्वथा परावलम्बी है । जब कोई वैधव्य आदि की दुर्घटना घटित हो जाती है और कोई उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति नहीं होती तो बालकों को पालना कठिन हो जाता है । यदि संतान न हुई तो भी उस बेचारी को घर–भर का कोप भाजन बनना पड़ता है । कई बार तो इसी अपराध में पतिदेव दूसरा विवाह कर लेते हैं और उसे विधवा जैसा दुख सधवा होते हुए भी सहना पड़ता है । इसी प्रकार एक पिंजड़े में बन्द, बाह्य क्षेत्रों से सर्वथा अपरिचित होने के कारण उसे इतना भी ज्ञान नहीं होता कि जीवन धारण करने की आवश्यकता समस्याओं को सुलझाने में भी समर्थ हो सके । जीवन को सफल या समुन्नत बनाने वाले कोई पुरुषार्थ कर सकना तो उसके लिए असंभव ही है ।

यह विपन्न अवस्था आज की नारी के लिए एक दुर्भाग्य ही है कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के विकास में अपनी शक्ति, सामर्थ्य, और प्रतिभा का कोई उपयोग नहीं कर सकती, आपत्ति आने पर अपना और अपने बच्चों के सम्मानपूर्ण जीवन की रक्षा भी नहीं कर सकती । एक और भारी लांछन उस पर यह है कि वह चरित्र की दृष्टि से सर्वथा अविश्वस्त समझी जाती है । उसके ऊपर कम से कम पहरेदार हर समय

रहना चाहिए । अपनी पुत्रियों, बहिनों और माताओं के प्रति ऐसी अविश्वास की भावना रखना, पुरुषों की अपनी नैतिक दुर्बलता का चिन्ह है । 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली कहावत के अनुसार वे अपनी चरित्रहीनता का आरोपण नारी में देखते हैं जो कि वस्तुतः पुरुष की अपेक्षा स्वभावतः अनेक गुनी चरित्रवान होती है ।

नारी पर अनेक प्रकार के बन्धन लगाकर उसे शिक्षा, स्वास्थ्य, धन, उपार्जन, सामाजिक ज्ञान, लोक सेवा आदि की योग्यताओं से वंचित रखना, एक ऐसी बुराई है जिससे आधे राष्ट्र को लकवा मार जाने जैसी स्थिति पैदा हो जाती है । अविकसित पराधीन और अयोग्य नारी का भार पुरुष को वहन करना पड़ता है, फलस्वरूप उसकी अपनी उन्नति भी अवरुद्ध हो जाती है । यदि नारी को सभ्य बनने दिया जाय तो वह पुरुष के ऊपर भार न रह कर उसके स्वास्थ्य, अर्थ व्यवस्था, शिशु विकास से लेकर अनेक अन्य कार्यों में भी सहायक होकर उन्नति के अनेक द्वार खोल सकती है । पर्दे में–पिंजड़े में बन्द रखकर पुरुष यह सोचता है कि इस प्रकार उसे व्यभिचार से रोका जा सकेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि नारी इतनी पतित है कि बन्धन के बिना यह सदाचारिणी रह ही नहीं सकती । यह मान्यता भारतीय नारी का भारी अपमान है और इन आदर्शों एवं भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल है जो अनादिकाल से भारतीय संस्कृति में नारी के प्रति समाहित की गई हैं ।

अनेक नारियाँ ऐसी हैं जिनके पास पर्याप्त समय है, पर उन्हें अवसर नहीं दिया जाता, जिसमें वे अपने जीवन को बन्दी से अधिक कुछ बना सकें । विधवाएँ और परित्यक्ताएँ घर वालों के लिए एक भार रहती हैं, पर वे उन्हें शिक्षा, लोक सेवा आदि किसी भी क्षेत्र में बढ़ने देने के लिए बन्धन ढीले नहीं करते । इन्हें अवसर दिया जाय तो अपने समय का सदुपयोग करके अपने व्यक्तिगत जीवन में भारी उत्कर्ष करके नारी रत्नों की श्रेणी में पहुँच सकती है और अपनी योग्यता से संसार को वैसा ही लाभ पहुँचा सकती है जैसा अनेक नर–रत्न, महापुरुष पहुँचाते हैं ।

भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की पुनीत वेला में महिलाओं की न्याय पुकार भी सुनी जानी चाहिए । नारी चाहती है कि उसके बन्धन ढीले किये जायें, उसे बिना पहरेदारों के भी सदाचारिणी रह सकने

जितना विश्वासी माना जाय, उसकी शिक्षा की व्यवस्था की जाय ताकि वह मनुष्यता की जिम्मेदारी को समझ सके, उसे जानकारी प्राप्त करने दी जाय ताकि वह पुरुष की परेशानी को सरल करने और उन्नति–प्रगति में सहायक हो सके, उसे योग्य बनने दिया जाय ताकि वह अपने परिवार की आर्थिक सुस्थिरता में हाथ बँटा सके। बदलते हुए युग में नारी अपने को एक जीवित लाश मात्र की स्थिति में रखे जाने से असंतुष्ट है वह भी आगे बढ़कर राष्ट्र निर्माण और समाज में कुछ योग देना चाहती है। भारतीय संस्कृति में इन सहज आकांक्षाओं के प्रति समुचित सहानुभूति एवं प्रेरणा का तत्व मौजूद है। वर्तमान के अनेक संस्कारों में से ही एक बुराई नारी की अनावश्यक पराधीनता है।

भावी युग में नारी का स्थान

आज नव निर्माण का युग है और इस नव निर्माण में नारी का सहयोग वांछनीय है अथवा यों कहें कि आने वाले युग का नेतृत्व नारी करेगी तो भी अतिशयोक्ति न होगी। नव निर्माण एवं युग परिवर्तन कहाँ से और कैसे आरम्भ होगा व नारी का उसमें क्या योग रहेगा–इस विषय का अध्ययन करने से पूर्व जरा प्रस्तुत विश्व स्थिति पर दृष्टिपात किया जाय। संक्षेप में आज का मानव जीवन जिन भीषण परिस्थितियों से गुजर रहा है उसका अनुमान लगाना भी भयंकर है। आज का वैयक्तिक जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन इतना अशांतिमय एवं अभावग्रस्त हो गया है कि मनुष्य को पलभर को चैन नहीं। तृतीय विश्व युद्ध के कगार पर खड़ी मानवता विज्ञान को कोस रही है और सुरक्षा एवं शान्ति के लिए त्राहि–त्राहि कर रही है। भौतिकवाद के नाद में एक देश दूसरे देश को, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने की ताक में बैठा है, युद्धीय अस्त्र शस्त्रों की होड़ ने तथा विषैले बमों ने विश्वशान्ति को खतरे में डाल रखा है। जीवन में जो अनास्था आ गई है, उसका कोई अन्त नहीं। जीवन के हर क्षेत्र में हम पिछड़ गये हैं और अधःपतन की ओर जा रहे हैं। सामाजिक विश्रृंखलता, नैतिक पतन, राजनैतिक विप्लव, धार्मिक अन्धानुकरण व अधार्मिकता, नैष्ठिक पतन आज के जीवन में घुन की भाँति लग गये हैं।

ऐसी पृष्ठभूमि में आज विश्व की माँग है और वह माँग भारत पूरी कर सकता है । वह माँग है शान्ति की, प्रेम की, सुरक्षा की तथा संगठन की । आज के युग की सबसे बड़ी माँग है–नव निर्माण की, प्रस्तुत परिस्थितियों में आमूल–चूल परिवर्तन एवं क्रान्ति की । आज हम युग परिवर्तन के प्रहरी बन कर विश्व को शान्ति का दीप दिखायेंगे, फिर से हमें अपने भारतीय ऋषि–मुनियों की परंपरा को जीवित करना होगा, फिर से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक एवं नैष्ठिक पुनरोत्थान की भावना को जन–जन में भर देना होगा । आज हमें भारतीय होने के नाते प्रत्येक नर–नारी को देश के नव निर्माण में प्राण–पण से जुट जाना होगा । इस युग परिवर्तनकारी आन्दोलन में और जागरण की स्वर्णिम बेला में भारतीय नारी का प्रथम उत्तरदायित्व है कि वह आगे कदम उठाये । आज की नारी सजग है, वह स्वतंत्रता, धार्मिकता एवं मर्यादा की प्रहरी है ।

आज भारतीय नारी हर क्षेत्र में कार्य कर रही है, वह युग का निर्माण करने के लिए सन्नद्ध है । युग करवट ले रहा है–परिस्थितियों का घटनाक्रम तीव्र गति से घूम रहा है–मानवता के अर्धभाग को छोड़ कर कोई देश व समाज उन्नति नहीं कर सकता । अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों के पोषण के लिए भारतीय नारी कटिबद्ध होकर कार्यक्षेत्र में उतर रही है । नारी की शिक्षा का प्रतिशत बढ़ाने के साथ–'साथ उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को ढालना होगा, दासता की श्रृंखलाओं से मुक्त करना होगा और पुरुष समाज को समझना होगा कि नारी उपभोग एवं वासना की वस्तु नहीं, एक जीती जागती आत्मा है, उसमें भी प्राण है, मान है और है स्वाभिमान की भावना । मनु ने नारा लगाया था–"यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता" नारी आज हर कदम पर नई प्रेरणा देगी, उसकी अगम शक्ति को फिर से प्रतिस्थापित करना होगा । वह ममतामयी माँ है, स्नेहमयी भगिनी है, पतिपरायण पत्नी हैं किन्तु दूसरी ओर वह चण्डी है, दुर्गा है, काली है । नारी ही वीर पुत्रों को जन्म देती है । ध्रुव, प्रहलाद, अभिमन्यु, शिवाजी, राणाप्रताप को जन्म देने वाली माताएँ भारत में ही हुईं, रणचण्डी दुर्गा की भाँति मर्यादा और मान के लिए जूझने वाली क्षत्राणियाँ और वीर झाँसी की रानी यहीं हुई–किन्तु हम

भूल गये उन सतियों के तेज को, उन वीर प्रसविनी जननियों को, उन कुल ललनाओं को किन्तु नारी का तेज आभूषणों की चमक व रेशमी परिधानों में धूमिल पड़ गया । इस चतुर्मुखी निर्माण की बेला में नारी को प्रेरणा लेनी होगी, उसमें फिर से आत्मबल जागृत करना होगा । जो आज की शिक्षित नारियाँ हैं वे आर्थिक स्वतंत्रता एवं पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर भारतीय गौरव को कलुषित न करें, उसकी गुप्त शक्तियों का ज्ञान करावें । देश में कन्याओं की शिक्षा पर लड़कों की शिक्षा से अधिक बल दिया जाय । ये भावावेश की बात नहीं, यह एक स्वयं सिद्ध सत्य है । नारियाँ शिक्षित होंगी तो पुरुष समाज तो स्वतः सुधर जायेगा, माताओं और पत्नियों के संस्कार से पुरुष समाज अपने आप सुसंस्कृत होगा । देश की मान–मर्यादा की रक्षा करने वाली नारी जब नवविहान का स्वर गुँजा देगी तो कोई सन्देह नहीं कि हमारे देश में आज फिर हरिश्चन्द्र, प्रताप, राम, भीम और अर्जुन पैदा होंगे ।

आज सम्पूर्ण नारी जाति का कर्तव्य है कि निन्दनीय वातावरण को छोड़कर, परवशता की ग्रन्थियाँ काटकर आगे बढ़े और समाज सुधार का, नैतिक उत्थान का, धार्मिक पुनर्जागरण का सन्देश मानवता को दे । पुरुषों से कन्धा मिलाकर घर और बाहर दोनों क्षेत्रों में नारी को कार्य करना होगा यही आज भारत की माँग है । आज भारत की माँग है–अध्यात्म एवं वैदिक धर्म का पुनरुत्थान और भारतीय धर्म एवं संस्कृति का पुनर्स्थापन । जब घर–घर में पुनः वेदों की वाणी गूँज उठेगी तब भारत फिर से अपने प्राचीन जगद्गुरु के गौरव को प्राप्त करेगा । हर क्षेत्र में, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक, शैक्षणिक एवं नैष्ठिक पुनर्संगठन करते हुए आज की शिक्षित नारी जिस पथ का निर्माण करेगी वह पथ बड़ा सुगम एवं आध्यात्मिक होगा । फिर से भारत में ऋषियों की परंपरा जागृत होगी, फिर से नारी की मातृ–शक्ति रूप में पूजा होगी और हम सम्पूर्ण विश्व को एक मौलिक प्रकाश एवं नवीन सन्देश देंगे । नारी ही घर–घर में ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकती है जो भारतीय संस्कृति पर आधारित हो । वह आज सबला बन कर चेतना, प्रेरणा, मुक्ति एवं आध्यात्मिकता की साकार मूर्ति के रूप अवतरित हो रही है । नारी का सहयोग परिवार में, समाज में आरम्भ होगा तो एक ऐसा वातावरण

बना होगा जहाँ फिर से दधीचि, कर्ण और राम पैदा होंगे । नारी की सबल प्रेरणा पुरुष को नवशक्ति से भर देगी किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि उसे आत्म–बल, चरित्र–बल, तप–बल में महान बनाना होगा ।

नारी विश्व की चेतना है, माया है, ममता है, मोह और मुक्ति है, किन्तु समय–समय पर उसकी अवतारणा भिन्न–भिन्न रूपों में होती है । आज हमें उन क्षत्राणियों की आवश्यकता है जो समय पड़ने पर समरांगण में उतर पड़ें साथ ही यह न भूलना चाहिए कि उसे पारिवारिक इकाई से विस्तृत क्षेत्र की ओर बढ़ाना है । गहनों से लदी रहने वाली भोग–विलासिनियों की आवश्यकता नहीं, आज तो ऐसी कर्मठ महिलाओं की आवश्यकता है जो पुरुष समाज एवं जाति तथा संपूर्ण देश को भारत की संस्कृति का पावन संदेश देकर देश में, घर–घर में फिर से प्रेम, त्याग, बलिदान, पवित्रता एवं माधुर्य का संदेश दें । अफलातून नामक यूनानी दार्शनिक ने कहा था, नारी स्वर्ग और नरक दोनों का द्वार है–बस आज फिर से नारी जाति कटिबद्ध हो जाये और अपने बल से पृथ्वी पर ही स्वर्ग का अवतरण करे ।

राष्ट्रीयता में नारियों का स्थान

जिस संकुचित वातावरण में रहकर स्त्रियाँ स्वयं संकुचित विचारों वाली बन गईं और जिस वातावरण के कारण पुरुषों में भी स्त्रियों के बारे में संकुचित विचार पैदा हो गये, उन सबको मिटाकर आज सुधरे हुए संसार में यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि स्त्री और पुरुष दोनों मानव समाज के दो अंग हैं, जिन पर समाज की समान जिम्मेदारी है ।

मनुष्य जीवन में स्त्री की जो जिम्मेदारियाँ हैं, उनको अंगीकार करके हमें स्त्रियों को अपना विशिष्ट भाग प्रदान करना है । अब तक गृह जीवन स्त्रियों के हाथ में था और बाहर का सारा व्यवहार पुरुषों के हाथ में था । इसके दो परिणाम स्पष्ट रूप से आज हमारे सामने हैं । एक तो यह कि आज समाज में पुरुषों के सभी व्यवहारों को एक प्रकार की श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा प्राप्त है और स्त्रियों के काम को जनाना समझकर उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है । आज भी कहीं बाहर जाकर काम करने में स्त्रियाँ विशेष गौरव अनुभव करती हैं जब

कि घर में रहने वाली और घर सम्हालने वाली बहनें अपने मन में यही समझती हैं कि हम कुछ नहीं करतीं और हमारा जीवन व्यर्थ ही बीत रहा है ।

दूसरा परिणाम यह हुआ कि बाहर के सब व्यवहारों पर पुरुषों की छाप पड़ी हुई है । आज हम जिस जगत में रह रहे हैं, वह आदि से अन्त तक पुरुषों की सृष्टि है । व्यापार, व्यवहार,, कानून–कायदा, राजनीति, धर्म–नीति, उद्योग धन्धे, सभी कुछ पुरुषों के बनाये हुए हैं । स्त्रियाँ आज इन कामों में कितना ही भाग क्यों न लें तब भी वे पुरुष बनकर यानी पुरुषों द्वारा ठहराये हुए तरीके से, उनके द्वारा विकसित की गई पद्धति से ही, उन सब कामों को करती हैं । स्त्रियाँ आज कितनी ही आगे क्यों न बढ़ जायें, कितने ही विभिन्न क्षेत्रों को क्यों न पदाक्रांत कर लें और पुरुषों की बराबरी करने का कितना ही आत्म–संतोष क्यों न अनुभव करें–तथापि आखिरकार उनको रहना तो उसी दुनियाँ में हैं, जिसका विधाता पुरुष है ।

जो काम स्त्रियों को कुदरत की ओर से सौंपा गया है और जिसे वे भली–भाँति कर सकती हैं, उसी बाल शिक्षा के काम को यदि वे पूरी तरह सम्हाल लें, तो वे एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी को सँभाल लेंगी ।

स्त्रियाँ कह सकती हैं कि इसमें आपने नई बात क्या कही ? आज न जाने कितने युगों से हम घर की और बच्चों की ही गुलामी करती आयी हैं और रात–दिन उन्हीं का पाखाना–पेशाव उठाती हैं, फिर उसी को करने में विशेषता क्या है ? पहली विशेषता तो भावना है । नारियों को समझना चाहिए यह काम सिर पर आकर पड़ा हुआ कोई बोझ नहीं है और पुरुष जितने भी काम करते हैं उनमें से किसी से किसी प्रकार हल्का नहीं है । इस भावना से यदि इन कामों को करें तो इनमें रस के घूँट पी सकती हैं । इसमें संदेह नहीं कि भावना के रंग से रंग कर हमारे सब काम अधिक सजीव और प्रकाशित हो उठेंगे ।

दूसरी विशेषता यह है उन्हीं कामों को करने के तरीकों की । परंपरागत तरीकों से बच्चों की परवरिश करना एक बात है और इस विषय के शास्त्रों का अध्ययन करके स्वयं प्रयोगों द्वारा उन तरीकों में उन्नति करना दूसरी बात है । यदि स्त्रियाँ बालसंगोपन संबंधी शास्त्रों का

अध्ययन करें, गहराई के साथ इन विषयों का चिंतन और मनन करें और इस प्रकार अपने अनुभवी विचारों की भेंट समाज के चरणों में चढ़ाती रहें, तो यह काम आज जितना हीन और गौण माना जाता है, उतना न स्वयं स्त्रियों को ही हीन और गौण मालूम होगा और न पुरुषों को ही गौण लगेगा ।

यदि हमारी बहनें बाल–मनोविज्ञान, बाल–शिक्षा शास्त्र, बाल–शरीर और बाल–मानस के विकास का और ऐसे अन्य विषयों का गंभीर अध्ययन करके तदनुसार इस दिशा में भली–भाँति करम करने लगें तो पुरुषों के दिल में कभी खयाल उठेगा ही नहीं कि चूँकि स्त्रियाँ उनकी तरह बाहर जाकर नौकरी नहीं करतीं, इसलिए वे कोई कम महत्व का काम करती हैं । एक कहावत है कि 'जिसके हाथ में पालने की डोरी है, वही संसार का उद्धारकर्त्ता भी है ।' यह कहावत या तो केवल लेखों निबन्धों में प्रयुक्त होती है अथवा मातृ दिन के उत्सव पर दोहरा दी जाती है, पर यदि बहनें मन में धार लें तो कल यह चीज पूरे अर्थों में सत्य और सार्थक हो सकती हैं ।

दूसरी बात यह है कि संसार के मानवी व्यवहारों में स्त्री को स्त्री के नाते ऐसा परिवर्तन करना चाहिए जो उसके विचारों और वृत्ति के अनुकूल हो । आजकल जिस तरह व्यवहार देश–देश और जाति–जाति के बीच हो रहा है उसमें कई प्रकार का जंगलीपन भरा हुआ है, पशुता भी है, हृदय शून्यता और अमानुषता भी है, पुरुषों की इस दुनियाँ में यह एक सामान्य धारणा बनी हुई है कि जहाँ–जहाँ व्यवहार का संबंध आता है, वहाँ–वहाँ उसकी नींव असत्य पर ही बनी होनी चाहिए । मनुष्य को दुनियाँ में यही सोचकर चलना चाहिए कि जो कुछ है सो बुरा ही बुरा है । जितने भी हक या अधिकार पाने हैं, वे सब लड़–झगड़ कर ही पाने हैं । ये और ऐसे अन्य अनेक अलिखित नियम आज मनुष्यों के आपसी व्यवहार में प्रचलित हैं ।

यह सच है कि यदि स्त्रियाँ पुरुषों का अनुकरण करना छोड़ दें और जो कुछ उनके मन को अच्छा लगे वैसा ही करने लगें तो मनुष्यों के व्यवहार में वे बहुत कुछ परिवर्तन कर सकती हैं और उसको अभीष्ट रूप भी दे सकती हैं । इसमें शक नहीं कि जो संस्कार पीढ़ियों और

सदियों पुराने हैं, उनके दूर होने या बदलने में भी काफी समय लगेगा । फिर भी दुनियाँ में ऐसी कोई चीज नहीं, जो असंभव हो, आजकल की स्त्री रोगों से ग्रसित हैं । एक रोग तो यह है कि वह चाहें या न चाहें, तो भी उनका मन यह मानना चाहता है कि पुरुष जो कहता है वही ठीक है, पुरुषों के ठहराये हुए नियम उनके बनाए हुए विधि–विधान, उनके तैयार किए हुए कानून–कायदे और उनके द्वारा प्रचारित रीति–रिवाज, जो कुछ भी हैं सो सब उसको सोलहों आने ठीक मालूम होते हैं ।

स्त्री का दूसरा रोग है–तंगदिली अर्थात् हृदय की संकुचितता । आज स्त्री महान बातों का उतनी ही महानता के साथ विचार नहीं कर पाती । उसके लिए यह बहुत जरूरी है कि वह अपने हृदय को विशाल बनावे और दुनियाँ को विशाल दृष्टि से देखे ।

यद्यपि नर और नारी भगवान की सृष्टि में समान महत्व रखते हैं, तो भी प्रकृति ने नारी पर संतानोत्पादन तथा उसके पालन के रूप में जो विशेष उत्तरदायित्व रखा है, उसके कारण उसका महत्व अवश्य बढ़ जाता है । नारी का कर्तव्य है कि सबसे पहले अपने इस उत्तरदायित्व को भली प्रकार और अधिकार पूर्वक निवाहे । वह आज अगर अबला बनी है और अनेक बार उसे पुरुष का दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता है, तो इसमें कुछ त्रुटि उसकी भी है । वह संतान के प्रति, विशेषतः पुत्रों से आवश्यकता से अधिक मोह रखती है और उनको सुयोग्य और कर्तव्य परायण बनाने की तरफ कम ध्यान देती है । इसी का परिणाम है कि पुरुषों में अनेक दोष पैदा हो जाते हैं और वे मातृ जाति के प्रति गर्वित व्यवहार करने में भी संकुचित नहीं होते । यदि नारियों ने अपने को पुरुष की दासी का पद ग्रहण करने के बजाय उसकी निर्मात्री के पद का कर्तव्य पालन किया होता तो आज संसार की दशा कुछ और ही होती ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

गायत्री विद्या सैट

१.	गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया	३.००
२.	गायत्री की शक्ति और सिद्धि	३.००
३.	गायत्री की युगांतरीय चेतना	३.००
४.	गायत्री की प्रचंड प्राण ऊर्जा	३.००
५.	गायत्री की उच्चस्तरीय पाँच साधनाएँ	३.००
६.	देवताओं, ऋषियों और अवतारों की उपास्य..	३.००
७.	गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार	३.००
८.	गायत्री का सूर्योपस्थान	३.००
९.	गायत्री और यज्ञ का अन्योन्याश्रित संबंध	३.००
१०.	गायत्री साधना से कुंडलिनी जागरण	३.००
११.	गायत्री का ब्रह्मवर्चस्	३.००
१२.	गायत्री पंचमुखी और एकमुखी	३.००
१३.	महिलाओं की गायत्री उपासना	३.००
१४.	गायत्री के दो पुण्य प्रतीक-शिखा और सूत्र	३.००
१५.	गायत्री का हर अक्षर शक्ति का स्रोत	३.००
१६.	गायत्री साधना की सर्वसुलभ विधि	३.००
१७.	गायत्री पंचरत्न	३.००
१८.	गायत्री के अनुष्ठान और पुरश्चरण साधनाएँ	३.००
१९.	गायत्री की चौबीस शक्तिधाराएँ	३.००
२०.	गायत्री विषयक शंका समाधान	३.००
२१.	गायत्री का वैज्ञानिक आधार	३.००
२२.	गायत्री महाविज्ञान (प्रथम भाग)	२०.००
२३.	गायत्री महाविज्ञान (द्वितीय भाग)	२०.००
२४.	गायत्री महाविज्ञान (तृतीय भाग)	२०.००

संपर्क सूत्र :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९



विचार क्रान्ति अभियान
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार